2.1

शिक्षा के लक्ष्य

राष्ट्रीय फोकस समूह
का
आधार–पत्र

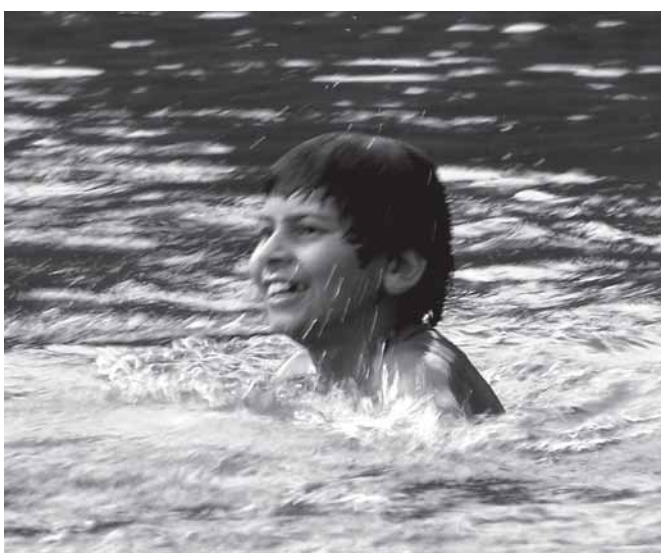

2.1

शिक्षा के लक्ष्य

राष्ट्रीय फोकस समूह
का
आधार–पत्र

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 81-7450-781-7

प्रथम संस्करण
अगस्त 2007 श्रावण 1929

PD 5T NSY

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2007

रु 15.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा एस. आर. ऑफसेट प्रेस, जे-9, उद्योग नगर, पीरागढ़ी, रोहतक रोड, नयी दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन सी ई आर टी के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग : *पेय्यटी राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी : *शिव कुमार*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *गौतम गांगुली*
संपादक : *नरेश यादव*
उत्पादन : *अरुण चितकारा*

सज्जा एवं आवरण
श्वेता राव

राष्ट्रीय फोकस समूह

शिक्षा के लक्ष्य

के सदस्यों के नाम

प्रो. मृणाल मीरी (अध्यक्ष)
कुलपति
उत्तर-पूर्व पर्वतीय विश्वविद्यालय
पो. नेहू, मावकिनरोह उमशिंग
शिलांग - 793 022
मेघालय

डॉ. शारदा जैन
निदेशक
संधान (सोसाइटी ऑफ़ एजुकेशन एंड डेवलपमेंट)
सी-196, बान मार्ग, तिलक नगर
जयपुर - 302 004
राजस्थान

प्रो. सी. शेषाद्रि
1391, सी. एंड डी. ब्लॉक
पूर्ण दृष्टि रोड, पहला क्रॉस, कुवेंपूनगर
मैसूर - 570 023, कर्नाटक

प्रो. पी. आर. नायर
152-I स्टेज, I ब्लॉक
कोरमंगला, बंगलुरु - 560 034
कर्नाटक

प्रो. रूप रेखा वर्मा
ऑनरेरी निदेशक
इंस्टीट्यूट ऑफ़ वीमेन स्टडीज़
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ - 226 007
उत्तर प्रदेश

डॉ. जयश्री माथुर
केंद्रीय शिक्षा संस्थान (सी.आई.ई.)
33, छात्रा मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली - 110 007

प्रो. सेबक त्रिपाठी
प्राचार्य
डॉ. पी.एम. इंस्टीट्यूट ऑफ़ एडवांस्ड स्टडीज़ इन एजुकेशन (आई.ए.एस.ई.)
संबलपुर, उड़ीसा-768 001

डॉ. गुरवीन कौर
प्राचार्य और सचिव, सेंटर फॉर लर्निंग
सी-128, ए.डब्ल्यू.एच.ओ.
वेद विहार, सुभाष नगर
सिकंदराबाद - 500 015, आंध्र प्रदेश

प्रो. सत्य पी. गौतम
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष
दर्शनशास्त्र केंद्र, सामाजिक विज्ञान संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
न्यू महरौली रोड, नयी दिल्ली - 110 067

डॉ. पी. किलेम संगला
प्राचार्य
नागालैंड शिक्षक-शिक्षा महाविद्यालय
पोस्ट बॉक्स सं. 108
कोहिमा - 797 001
नागालैंड

डॉ. आर. के. मुजू
शिक्षा विभाग
असम विश्वविद्यालय, दरगाकौवा
सिलचर - 788 011
असम

डॉ. आरती श्रीवास्तव
शिक्षा संकाय
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय
कमच्छा, वाराणसी
उत्तर प्रदेश

डॉ. उत्पला कनवर (सदस्य सचिव)
ओ.एस.डी.
एन.ई.आर.आई.ई.
(एन.सी.ई.आर.टी.)
लैतुमुखरा, शिलांग - 793 003
मेघालय

आमंत्रित सदस्य
प्रो. सी.एस. नागाराजु
विभागाध्यक्ष
शैक्षिक अनुसंधान और योजना परिप्रेक्ष्य विभाग
(डी.ई.आर.पी.पी.)
एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली 110 016

डा. एस. यादव
रीडर (अंग्रेजी)
एन.ई.आर.आई.ई. (एन.सी.ई.आर.टी.)
शिलांग-793 003
मेघालय

अनुवाद सहयोग

डॉ. के.के. मिश्रा, *प्रोफ़ेसर,* होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र, वी.एन. पुराव मार्ग, मैनखुर्द, मुंबई 400 088, महाराष्ट्र

डॉ. लता पाण्डेय, *रीडर,* डी.ई.ई., एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

डॉ. राजेन्द्र पाल, *रीडर,* सी.आई.ई.टी., एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

डॉ. रंजना अरोड़ा, *रीडर,* पाठ्यचर्या समूह, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

विषय-सूची

'शिक्षा के लक्ष्य' पर बने राष्ट्रीय फोकस समूह के सदस्य *v*

1. परिचय 1
2. पृष्ठभूमि 1
3. शिक्षा के लक्ष्य 2
4. शिक्षाशास्त्र तथा मूल्यांकन हेतु कुछ निहितार्थ 5

अनुलग्नक - भाषा, परंपरा तथा समझदारी 7

1. परिचय

काफी लंबे समय से हम भारत के बच्चों को शिक्षित करने के बड़े कार्य से जुड़े रहे हैं - भारत जो कि एक स्वतंत्र राष्ट्र है तथा जिसका संपन्न इतिहास है, जहाँ असाधारण रूप से जटिल सांस्कृतिक विविधता है, लोकतांत्रिक मूल्यों तथा जनकल्याण के प्रति वचनबद्धता है। कार्य की व्यापकता तथा महत्ता के मद्देनज़र यह ज़रूरी है कि हम समय-समय पर ऐसे अवसर पैदा करें जब हम साथ बैठें, विचार करें और खुद से पूछें कि अपने कार्य के प्रति हम क्या कर रहे हैं? क्या ऐसे सवाल हमें खुद से फिर पूछने की आवश्यकता है कि शिक्षा का मक़सद क्या होना चाहिए? शिक्षा के लक्ष्यों पर फोकस समूह का गठन संभवत: ऐसा ही एक अवसर प्रदान करने का प्रयास है।

विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था ने विगत कई दशकों में जो किया है, यदि हम उस पर एक नज़र डालें तो शायद हमें संतुष्ट होने के लिए काफी कुछ दिखाई देगा। इस प्रक्रिया से निकले विद्यार्थी राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय जीवन में विविध क्षेत्रों में गए हैं तथा उन्होंने अपनी पहचान बनाई है और एक छाप छोड़ी है। लेकिन हमारी शिक्षा पद्धति के कई पहलुओं विशेषकर स्कूली व्यवस्था के संबंध में गहरा असंतोष भी व्याप्त है। यह असंतोष कई वजहों से पैदा होता है। जैसे :

(अ) स्कूली व्यवस्था में एक विशेष तरह की कठोरता है जो बदलाव के मार्ग पर बाधा की तरह खड़ी हो जाती है।

(ब) 'सीखना' एक प्रकार से अलग-थलग गतिविधि हो गई है, जो बच्चों को अपने ज्ञान को जैविक व जीवंत तरीके से जीवन से जोड़ने को प्रोत्साहित नहीं करती।

(स) शिक्षा को अब ज़्यादा से ज़्यादा बच्चों के भविष्य को सुनिश्चित करने के एक साधन के रूप में देखा जाने लगा है (अर्थात उनका समाज में स्थान तथा आर्थिक स्तर जो इस स्थान की गारंटी देता है) – इस वजह से बच्चे की मौजूदा क्षमताओं तथा उसकी समस्याओं की भी उपेक्षा हो रही है।

(द) स्कूलों में ज्ञान के रूप में बच्चों को जो भी जानकारी दी जाती है, उनके सामने जो भी प्रस्तुत किया जाता है या प्रदान किया जाता है वह व्यक्ति के जीवन के ज्ञान शास्त्रीय उद्यम के कई महत्वपूर्ण घटकों को छोड़ देता है।

(य) स्कूल एक विशेष तरह की विचार पद्धति को बढ़ावा देता है जो चिंतन को हतोत्साहित करती है और नयी तथा आश्चर्यजनक अंतर्दृष्टि को रोकती है।

2. पृष्ठभूमि

शिक्षा वास्तव में कोई आधुनिक पद्धति नहीं है। यद्यपि यह दावा किया जा सकता है कि आज उसमें आधुनिक तरीके अपनाए जा रहे हैं। अभी तक यह माना जाता रहा है कि यह शिक्षण और अधिगम की व्यवस्था है, इसलिए सभी पारंपरिक समुदायों ने अधिगम और शिक्षण के औपचारिक तथा अनौपचारिक तरीके बनाए हैं। ऐसे शिक्षण तथा अधिगम का लक्ष्य मुख्य रूप से बच्चों तथा किशोरों को सामुदायिक जीवन के ढर्रों से सुपरिचित कराना है।

शैशवावस्था में जो सबसे आश्चर्यजनक अधिगम होता है वह है समुदाय की भाषा को काम में लाना सीखना, जिसे हम बच्चे की पैदाइशी या प्राथमिक भाषा कहते हैं। यहाँ इस प्रक्रिया का एक अहम पहलू यह है कि इसमें कोई बहुत सायास या संगठित शिक्षण नहीं है। यह विशेष दुनिया यानी सामुदायिक दुनिया में बच्चे का अभिज्ञ तथा अनायास प्रवेश है। सेंट ऑगस्टाइन ने बहुत समय पहले कहा था कि भाषा हमारे लिए दुनिया को रोशन करती है। इसमें हम यह जोड़ सकते हैं कि हर भाषा अपने तरीके से दुनिया को रोशन करती है। बच्चे के लिए अपनी पैदाइशी भाषा को सीखना उसी तरह है जैसे उसके 'ज्ञान क्षेत्र' में एक विशेष दुनिया ख़ास शक्ल ले रही है (शिक्षा के लिए भाषा के महत्व के मद्देनज़र इस प्रतिवेदन के साथ हमने अलग से भाषा पर एक नोट जोड़ा है)।

पारंपरिक समुदायों की शिक्षा को लेकर हमारी मुख्य चिंता थी – विभिन्न तरह के कौशलों का प्रसार करना विशेषकर समुदाय के आर्थिक जीवन से जुड़े कौशलों : कृषि, शिकार, मछली मारना, पर्यावरण के प्रति ध्यान, जैसे इसके पेड़-पौधों, जीव-जंतु, जल स्रोतों, पक्षियों आदि का प्रसार। लेकिन समुदायों की ख़ास इच्छाओं तथा आकांक्षाओं से संबंधित कौशलों पर भी बहुत ध्यान दिया गया जिन्हें मोटे तौर पर 'सौंदर्यशास्त्रीय' तथा 'आध्यात्मिक' रूपों में वर्गीकृत करते हैं तथा जो समुदाय के 'आत्म-प्राण' को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। इन कौशलों में शामिल हैं : संगीत, दस्तकारी, तसवीरें बनाना तथा रँगना, लकड़ियों, पत्थरों तथा मिट्टी में आकृतियाँ उकेरना, बर्तन बनाना, सजावटी सामानों का उत्पादन, जो कि उपयोगी हो सकते हैं लेकिन अहम बात यह है कि ये अभिव्यक्ति से जुड़े कौशल हैं।

एक समुदाय परंपरागत रूप से अपने लिए एक निरंतरता ग्रहण करता है – निरंतरता मानवीय संबंधों की संरचना की, जो काफ़ी हद तक इसे इसकी विशेष पहचान तथा अर्थ प्रदान करती है। इस धारणा के मद्देनज़र सामुदायिक ढाँचे में शिक्षा के मक़सदों का ताल्लुक मुख्य रूप से समुदाय के कल्याण तथा विकास से जुड़े विचारों से है। अगर किसी को यह पूछना हो कि ऐसे ढाँचे के अंतर्गत शिक्षा का सर्वोच्च विचार क्या हो जो इसे बढ़ावा और पोषण दे तो संभवत: ज़वाब हो सकता है कि समुदाय के प्रति अनुराग।

यद्यपि हमारे अपने समय में समुदाय एक ताकतवर उपस्थिति का अहसास कराता आया है और सायास तौर पर बनाये गए समुदायों के प्रसार के बावजूद दुनिया काफी समय से इनसान के समुदाय केंद्रित दृष्टिकोण से दूर हटती रही है। यह दो नितांत भिन्न दिशाओं में फैलती रही है : (अ) व्यक्ति की दिशा में तथा (ब) वैश्विक या सार्वत्रिक दिशा में। व्यक्ति के कल्याण तथा भलाई ने समुदाय की भलाई या कल्याण पर प्राथमिकता पा ली है। आधुनिक संसार की दूसरी तमाम केंद्रीय संकल्पनाओं की तरह मानवाधिकार के विचार की उत्पत्ति भी शायद इसी बात में है।

मानवता को कभी-कभी सभी मनुष्यों के 'समुदाय' के रूप में लिया जाता है। लेकिन ऐसा मानना समुदाय की संकल्पना का एक गलत अर्थ लगाना होगा। समुदाय की संकल्पना के प्रति हमारा लगाव बहुत गहरा और दृढ़ है। मानवता को समुदाय की बराबरी में लाने से हम इस लगाव को न केवल अभिव्यक्ति देते हैं वरन् इससे वह अर्थ लगाते हैं जो इसमें नहीं होता।

इस परिप्रेक्ष्य में आमूल परिवर्तन के मद्देनज़र शिक्षा को अब मूल्यों के संपोषण के रूप में देखा जाना चाहिए जिसमें एक ओर वैयक्तिक कल्याण तो दूसरी ओर मानवता की भलाई शामिल हो।

लेकिन कठिनाई यहाँ वास्तव में व्यक्ति की अवधारणा को स्पष्ट करने की है जो कि संबंधों के जटिल जाल में स्थित होते हुए भी उस पर निर्भर नहीं है। इसके अलावा सबको मिलाकर चलने वाली यह मानवता क्या है? क्या यह मानवता से अलग है या इसी का कोई विशेष रूप?

व्यक्ति तथा मानवता के बारे में विचार संबंधी स्पष्टता के अभाव का हमारे समय में शिक्षा के लक्ष्यों के बारे में चिंतन करते समय कठिनाई पैदा करना लाज़मी है। इसलिए पहले इस तरह के प्रतीत होने वाले अंतर्विरोधों से बाहर आने की राह पानी होगी जैसे : हमें बच्चे को वैज्ञानिक संचेतना पैदा करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए (अर्थात संस्कृति, परंपरा तथा समुदाय के आदेश से परे जाकर उसकी तर्क देने की प्रकृति) तथा हमें उसे मानवता के अपराजेय मूल्यों को सिखाना चाहिए। हमें व्यक्ति तथा मानवता के बीच राष्ट्र के लिए एक स्थिर स्थान पाना चाहिए।

3. शिक्षा के लक्ष्य

शिक्षा से संबंधित कई मुद्दे हैं जिनके बारे में हम काफ़ी स्पष्ट हैं तथा इस बारे में बहुत हद तक आम सहमति भी होनी चाहिए। यहाँ यह सवाल पूछना लाज़मी होगा कि शिक्षा के क्या लक्ष्य होने चाहिए?

(i) स्कूली शिक्षा बच्चे के जीवन में एक सायास तथा कमोबेश बाह्य हस्तक्षेप है। हालाँकि ज़्यादातर

अधिगम घर पर, आस-पड़ोस के समुदाय में तथा ग्रामीण और जनजातीय भारत के वास्तविक समुदायों में होता है। स्कूल बच्चे का परिचय शिक्षण-अधिगम के उस वातावरण से कराता है जो कि बच्चे के अपने बाकी जीवन से नितांत भिन्न होता है। ज़्यादातर बच्चों के लिए कमोबेश टैगोर के स्कूल के प्रथम दिन का अनुभव दुहराया जाता है। उन्हीं के शब्दों में - ''....अचानक मैने अपनी दुनिया को अपने आसपास से सिमटते पाया, उसका स्थान लकड़ी की बेंचों तथा सीधी खड़ी दीवारों ने ले लिया, जो मुझे अंधे की तरह खाली घूर-घूरकर देख रही थीं।''* शायद स्कूलों की अपनी ख़ुद की चारदीवारी होनी चाहिए, क्योंकि स्कूल के जीवन को आसपास के सामुदायिक जीवन से मिलाया नहीं जा सकता, लेकिन ये चारदीवारियाँ अवरोधक नहीं होनी चाहिए। उन्हें बच्चे के अपने घर और समुदाय के अनुभव तथा स्कूल के अनुभव को जोड़ने वाली महत्वपूर्ण कड़ी विकसित करने में मददगार होना चाहिए।

(ii) आत्मज्ञान, आत्म-अनभिज्ञता तथा आत्मवंचन को दूर करता है। दूसरे से धोखा खाना बुरा है लेकिन खुद से धोखा खाना उससे भी ज़्यादा बुरा है। हालाँकि दुर्भाग्य से हम ज़्यादातर समय खुद को ही धोखा देते हैं। हमारा भारी-भरकम अहम्, जो हममें से ज़्यादातर के पास होता है, केवल नित्य धोखे की नियमित ख़ुराक पर इसी तरह भारी रह सकता है। स्व-ज्ञान केवल दूसरे के ज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है और किसी दूसरे को उसका बने बिना नहीं जाना जा सकता। शिक्षा ख़ुद को खोजने, ख़ुद की सच्चाई को जानने की निरंतर प्रक्रिया होनी चाहिए। यह जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है। लेकिन स्कूल सोच-विचार कर तैयार कराए गए विविध प्रकार के कक्षायी अनुभवों द्वारा बच्चों के जीवन के लिए इस प्रक्रिया के महत्त्व को दर्शा सकते हैं।

(iii) बच्चों तथा किशोरों को इस बात का विश्वास दिलाने की आवश्यकता है कि सदाचार का जीवन अधर्म और दुष्टता से बेहतर है। इसे करने का एक ही तरीका है कि हम कारगर रूप से उन्हें दिखाएँ कि मनुष्य के जीवन में वास्तविक खुशी सदाचार के साथ जीने में ही है। लेकिन यह कैसे किया जाए? हम इसके विपरीत विचार का कैसे मुकाबला करें कि वास्तव में सदाचार से नहीं बल्कि ताकत और संपत्ति से खुशियाँ मिलती हैं? एक ऐसी दुनिया में जहाँ दूसरा वाला विचार पूरी तरह प्रभावी है, बच्चों को सदाचारपूर्ण जीवन के बारे में बताना हमारे लिए असंभव हो सकता है। इसलिए हमारे लिए ज़रूरी है कि हम अपनी सामाजिक संरचना के बारे में सोचने तथा प्रश्न करने की संभावना बनाए और मनुष्य के असंतोष तथा सदाचारविहीन जीवन के बीच के गहरे संबंध को भिन्न तरीके से दिखाएँ।

इस संबंध में तथा मूल्य-शिक्षा की आवश्यकता का जो ढिंढोरा पीटा जा रहा है उसके प्रकाश में सदाचारी तथा नैतिक जीवन के बारे में निम्नलिखित मुद्दों पर बात किए जाने की आवश्यकता है:

पहला, केवल वही व्यक्ति सदाचारी नहीं है जिसमें साहस, बुद्धि, संयम इत्यादि सदाचार हों। अलगाव में सदाचारों का नैतिक जीवन से कुछ लेना-देना नहीं है। उदाहरण के लिए, साहस का नितांत बुरे मक़सद के लिए भी इस्तेमाल हो सकता है, गोडसे के साहस के बारे में सोचिए। यही बात बुद्धि के साथ है। संयम, यदि नैतिक जीवन की जैविक एकात्मता से संतुलित न किया जाए तो इसके उत्साहहीन, आनुष्ठानिक अनुशासन के रूप में ह्रास होने का खतरा दिखाई देता है।

*रवीन्द्र नाथ टैगोर, *'माई स्कूल'-इंग्लिश राइटिंग्स ऑफ़ टैगोर,* खंड 2, संपा. शिशिर कुमार दास, साहित्य अकादेमी, 1996

तो वह क्या है जो सदाचार में नैतिकता डाल देता है? हमें यह स्वीकार करने का साहस होना चाहिए कि यह सत्य और प्रेम है या हमारे नैतिक विचार की सशक्त परंपरा में अहिंसा। सत्य का अर्थ है आत्म-वचंन से मुक्ति और यहाँ यह पर्याप्त नहीं है कि कोई कभी-कभी ही सत्य बोलता है। जैसा कि विटजेंस्टीन का कथन है – "सत्य वही बोल सकता है जो इससे सुपरिचित है, वह नहीं जो अभी भी झूठ में रहता है तथा झूठ से सच्चाई की ओर किसी एक अवसर पर निकलता है।"* साहस, संयम, बुद्धि इत्यादि सदाचारी जीवन में एक साथ ऐसे नहीं आ सकते जब तक कि उनमें सत्य के प्रेम की मध्यस्थता न हो और सत्य का प्रेम - जब हम नैतिक जीवन की चर्चा कर रहे हों, सिर्फ अहिंसा की सक्रिय तथा प्रचुर उपस्थिति में ही फल-फूल सकता है।

दूसरा, नैतिक जीवन के प्रसंग में, साधन और साध्य में एक संततता होनी चाहिए, यानी साध्य और साधन एक युक्तिसंगत इकाई बनाते हैं। इस संदर्भ में साधन और साध्य का भेद यदि है तो वह अलग होगा उस भेद से जहाँ साधन का इस्तेमाल महज अपेक्षित नतीजे के लिए होता है जैसे शारीरिक रूप से दुरुस्त रहने के लिए फुटबाल खेला जाए। फुटबाल शारीरिक तंदुरुस्ती के लिए बाहरी रूप है। लेकिन सदाचारी जीवन में नैतिकता बाहरी नहीं है। (यहाँ जो स्थिति ली गयी है वह 'ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है' वाली कहावत में निहित उपयोगितावादी स्थिति के विपरीत है)। नैतिक मामलों में प्रक्रिया उत्पाद में निहित है और उत्पाद प्रक्रिया से अलग नहीं है। यहाँ, ऐसी कोई चीज़ नहीं हो सकती, जैसे किसी पूर्व निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सक्षम साधन की खोज की जाए (जैसे प्रबंधन के मामलों में), क्योंकि नैतिक साध्य की ओर बढ़ने में साधन परिहार्य या विस्थापनीय नहीं हैं।

इसका एक महत्वपूर्ण उपसिद्धांत यह है कि अगर मूल्य शिक्षा को शिक्षा का एक ज़रूरी हिस्सा बनाना है तो मूल्यों या सदाचारों को शिक्षा की पूरी प्रक्रिया का अंदरूनी अंग होना होगा। मूल्य-शिक्षा शिक्षा के अलग से टुकड़े के रूप मे नहीं दी जा सकती है। समूची शिक्षा को ही मूल्य-शिक्षा बनाना होगा। यहाँ हमें पुरज़ोर तरीके से अहिंसा, शांति और सद्भाव के गांधीवादी विचारों का पुनःस्मरण करने की ज़रूरत है।

(iv) सांस्कृतिक विविधता एक बहुत ही अमूल्य चीज है। दूसरे का सम्मान करने तथा उसके प्रति न्याय करने का एक अर्थ यह भी है कि उससे जुड़े खास संस्कृति या समुदाय के प्रति सम्मान तथा न्याय। इसलिए ज़रूरत है कि हम अपने देश में अंतर-सांस्कृतिक संबंधों की केंद्र/परिधि वाली धारणा को पूरी तरह बदलें। तथाकथित परिधि में स्थित संस्कृतियों को भी उतना ही मान-सम्मान मिलना चाहिए जितना कि केंद्र में मौजूद संस्कृतियों को। शिक्षा के लिए इसके गहरे निहितार्थ हैं। यह निहितार्थ इस प्रकार हैं कि जीवन जीने के अपने स्वयं के तरीके के अलावा अन्य तरीकों को भी इस प्रकार काल्पनिक एवं प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि उन्हें भी उतना ही सम्मान मिले जितना कि अपने जीवन जीने के तरीके को।

(v) वैयक्तिक अंतर भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि सांस्कृतिक अंतर। प्रत्येक बच्चे में अपनी क्षमताएँ और कौशल होते हैं जिन्हें स्कूली परिवेश में पर्याप्त मान्यता नहीं मिलती।

---

* विटजेंस्टीन ल्यूडविग, 1973-*कल्चर एंड वेल्यू*, ब्लेकवैल

इन योग्यताओं तथा कौशलों के संवर्द्धन से न केवल वैयक्तिक जीवन को बढ़ावा मिलेगा बल्कि समुदाय का जीवन भी समृद्ध होगा। इसलिए शिक्षा को यथासंभव बच्चे की समस्त योग्यताओं, क्षमताओं तथा कौशलों को प्रोत्साहन तथा पोषण देना चाहिए। यहाँ हमारा ध्यान विभिन्न क्षेत्रों के कौशलों, जैसे कला (संगीत, नृत्य, नाट्य, चित्रकारी और शिल्प इत्यादि) एवं भाषा के उपयोग से संबंधित साहित्यिक योग्यताएँ (किस्से/ कहानियाँ कहना, जीवन के मज़ेदार अनुभवों को प्रदर्शित करने हेतु भाषा का प्रबंधन, लाक्षणिक/रूपकों तथा कविताओं के भाव प्रदर्शन की निपुणता) की ओर जाता है। हम कुछ बच्चों की प्रकृति में मौजूद चीज़ों, पेड़-पौधों, पक्षियों तथा जानवरों के प्रति लगाव/जुड़ाव के बारे में भी सोच सकते हैं।

(vi) ज्ञान कोई एकात्मक संकल्पना नहीं है। ज्ञानार्जन के कई प्रकार तथा तरीके हैं। ऐसा विचार कि वस्तुनिष्ठता, जो कि ज्ञान का आवश्यक घटक है, उसे सिर्फ तभी पाया जा सकता है यदि ज्ञान भावनात्मक दुनिया (चिंता, दिलचस्पी और लगाव) से मुक्त हो, तो ऐसी वस्तुनिष्ठता का परित्याग कर दिया जाना चाहिए। शिक्षा के लिए इसका एक निहितार्थ यह है कि जिस प्रकार प्रयोगशालाओं में प्रयोग कर या निगमात्मक चिंतन के द्वारा मनुष्य ज्ञान की खोज करता है उसी प्रकार साहित्यिक तथा कलात्मक रचनात्मकता भी मनुष्य के ज्ञानात्मक उपक्रम का एक हिस्सा होती है। यह हमें अकसर सच्चाई से साक्षात्कार कराने में सक्षम बनाती हैं जो एक वैज्ञानिक अन्वेषण नहीं करा पाता।

(vii) शिक्षा को मुक्त करने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए अन्यथा अब तक जो कुछ भी कहा गया है वह अर्थहीन हो जाएगा। शिक्षा की प्रक्रिया को सभी प्रकार के शोषण और अन्याय से मुक्त होना पड़ेगा (जैसे गरीबी, लिंग भेद, जाति तथा सांप्रदायिक झुकाव) जो हमारे बच्चों को इस प्रक्रिया का हिस्सा बनने से वंचित करते हैं।

(viii) यह ज़रूरी है कि स्कूली पढ़ाई सौन्दर्यात्मक रूप से सुखद वातावरण में हो। साथ ही यह भी आवश्यक है कि इस तरह का वातावरण बनाने में बच्चे सक्रिय भागीदारी करें।

(ix) हर बच्चे में राष्ट्र के प्रति गर्व की भावना का विकास किया जाना चाहिए। लेकिन कोई व्यक्ति किसी चीज़ के लिए तभी गर्व का भाव रख सकता है जब वह स्वयं उसकी उपलब्धि हो या फिर उस व्यक्ति, संस्था या एजेंसी से बड़े निकट से जुड़ा हो जिसकी वह उपलब्धि है। हम अपनी उपलब्धियों, या अपने बच्चों, या अपने मित्रों की उपलब्धि के प्रति गौरव रख सकते हैं। अगर हम ईश्वर या प्रकृति के प्रति अंतरंगता का अनुभव करते हैं तो हम धरती, आकाश, तथा यहाँ तक कि संपूर्ण ब्रह्मांड के प्रति भी गर्व महसूस कर सकते हैं। इसलिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि शिक्षा बच्चे के मन में ऐसे लोगों के प्रति घनिष्ठता को प्रोत्साहित करे जो उपलब्धियों से सीधे जुड़े हैं तथा जो हमारी राष्ट्रीय विरासत के अंग हैं। यहाँ यह देखना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि बच्चों में अपने राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना संपूर्ण मानवता की महान उपलब्धियों के प्रति गौरव को पीछे न कर दे।

4. शिक्षाशास्त्र तथा मूल्यांकन हेतु कुछ निहितार्थ

अब तक जो कुछ कहा गया है उसका शिक्षाशास्त्र तथा मूल्यांकन के लिए क्या निहितार्थ है, इसके बारे में विचार करना उपयोगी हो सकता है। स्कूल के अनुभव तथा बच्चे की बाहर की दुनिया के अनुभव को कल्पनापूर्ण ढंग से जोड़कर हम स्कूली वातावरण के अजनबीपन को कुछ कम कर सकते हैं। स्कूल के पास बच्चे को देने के लिए नए और रुचिकर अनुभव हो सकते हैं लेकिन ऐसा

कदापि प्रतीत नहीं होना चाहिए कि वे बच्चे के अनुभवों की अनदेखी कर रहा है। बच्चे के अनुभवों को शामिल करके शिक्षाशास्त्र समृद्ध होगा तथा जैसा कि ग्रीक इस तरीके को *'ओइकोस'* कहते हैं इससे बच्चे को स्कूल से बाहर की दुनिया का अनुभव करने के नए तरीके पता चलते हैं। उदाहरणार्थ, अगर कोई बच्चा प्रकृति के साथ अंतरंग जुड़ाव के साथ बड़ा हुआ है, जैसा कि ज़्यादातर जनजातीय बच्चों के साथ होता है, स्कूल बच्चे की अपने प्राकृतिक परिवेश के प्रति जानकारी को पैना कर उसकी इस घनिष्ठता को समृद्ध कर सकता है तथा उसे बढ़ा सकता है। लेकिन अफ़सोस कि हमारे ज़्यादातर स्कूलों में ऐसा नहीं होता। यहाँ शिक्षक की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण तथा निर्णायक है। यहाँ एक उन्नीस साल के शिक्षक का स्मरण दिलाना समीचीन होगा जो विद्यालय में शिक्षण में टैगोर की मदद करने आया था:

> उसके साथ बच्चों को कभी भी ऐसा नहीं लगा कि वे टीचिंग क्लास तक सीमित थे, उन्हें लगता था कि उनकी पहुँच हर जगह है। वे उसके साथ वसंत ऋतु में जंगल में जा सकते थे जहाँ *साल* के पेड़ फूलों से लदे हुए थे और वहाँ वह उन्हें उत्साह से अपनी पसंदीदा लबरेज़ कविताएँ सुनाता ....। उसे बच्चों की समझने की शक्ति पर कभी अविश्वास न था। वह जानता था कि बच्चों के लिए अक्षरश: तथा सटीक तौर पर किसी चीज़ को समझना ज़रूरी नहीं था। बल्कि ज़रूरी यह था कि उनके मस्तिष्क को जगा दिया जाए, और इसमें वह हमेशा सफल रहा। वह अन्य शिक्षकों जैसा न था, महज पाठ्यपुस्तकों के वाहक। उसने अपने शिक्षण को व्यक्तिगत बनाया, वह स्वयं इसका एक स्रोत था, और इसलिए वह जीवन की सामग्री से निर्मित था। मानव स्वभाव में बिलकुल आसानी से घुल मिल जाने योग्य।*

शिक्षण-शास्त्र को रचनात्मक खोज करने वाले संसाधनों पर निर्भर होना चाहिए, जैसे साहित्य, अपने विभिन्न रूपों में, इतिहास अनावृत रूपों में; जैसे उपनिवेशक तथा उपनिवेशी दोनों के चेहरे से मुखौटा हटाना। अलग-अलग प्रतीत होने वाली घटनाओं तथा चीज़ों, वे घटनाएँ और वस्तुएँ जो एक-दूसरे के नज़दीक हैं और वे जो समय और स्थान में भिन्न हैं, के बीच संबंध स्थापित करना महत्वपूर्ण है – ऐसा संबंध जो बच्चों के दिमाग में चल रही बातों को अकस्मात् प्रकाशित कर दे।

अगर पूरी शिक्षा, एक सशक्त अर्थों में, नैतिक शिक्षा है तथा यदि नैतिक मामलों में साधन और साध्य जैविक या आंतरिक रूप से जुड़े हैं, तब शिक्षक, जो कि शिक्षा का प्राथमिक वाहक है, उसे अपनी भूमिका में सदाचार की जीवंत मूर्ति के रूप में दिखाई देना चाहिए।

शिक्षण सामान्य बातचीत के माध्यम से होना चाहिए न कि प्रभुत्ववादी एकतरफा भाषण की रीति से। यह बातचीत का ही तरीका हो सकता है जिससे बच्चे का आत्मविश्वास और उसकी स्व-चेतना बढ़ेगी तथा वह ज़्यादा सरलता से अपने तथा शिक्षक के द्वारा दिए जा रहे अनुभवों के बीच रिश्ता बनाएगा। इसी तरह जैसे अनुशासन में रहना सीखना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है, बाहर से थोपे गए अनुशासन को बच्चे के दिन-प्रतिदिन के जीवन की क्रमबद्धता में घुल-मिल जाना चाहिए, जिसे बच्चे अपने भले के लिए एक ज़रूरी चीज़ के रूप में देखें। इसीलिए लागू की गई जवाबदेही धीरे-धीरे बिना बाध्यता वाली जवाबदेही की भावना में तब्दील हो जानी चाहिए इसका अभिप्राय यह है कि स्व-आकलन तथा साझी जवाबदेही पर ज़्यादा ज़ोर होना चाहिए।

बुद्धि विविध रूपी है, तथा शिक्षण-शास्त्र एवं मूल्यांकन ऐसे हों जो यह मुमकिन कर सकें कि यह विविधता अपने पूर्ण रूप में निखरे। विविध क्षेत्रों में उत्कृष्टता को मान्यता मिलनी चाहिए तथा उसका सम्मान होना चाहिए। मूल्यांकन में इस बात पर ज़ोर होना चाहिए कि जो पढ़ाया गया है उसके प्रति बच्चा कितना जवाबदेह रहा है इसका मूल्यांकन हो न कि उसके याद करने की क्षमता का। उसकी जवाबदेही में कई बातें शामिल होंगी मसलन कि उसे जो पढ़ाया गया है उसका अपने जीवनानुभव तथा दूसरी तमाम चीजों से संबंध जोड़ने की योग्यता, सीखी गयी चीजों के बारे में नए और आश्चर्यजनक तरीके से सवाल बनाने की क्षमता, अपने पाठों में, सही और अच्छे के

*रवीन्द्र नाथ टैगोर, *'माई स्कूल', इंग्लिश राइटिंग्स ऑफ़ टैगोर, खंड 2,* संपा., शिशिर कुमार दास, साहित्य अकादेमी, 1996

विचार से विचलन को देख पाने की क्षमता, जिसे स्कूल उसे प्रदान करने का प्रयत्न कर सकता है।

अनुलग्नक : भाषा, परंपरा तथा समझदारी

हम अपने परिवारों में बढ़ते हुए सीखते हैं। अपनी भाषा को बोलना सीखते समय हम कई और चीजें सीखते हैं। अपनी भाषा के माध्यम से हमें अपने परिवार तथा समुदाय के नैतिक क्रम/संदर्श से परिचित कराया जाता है। हम अपनी दैनिक ज़िंदगी में नाम पुकारना, पहचान करना, वर्गीकृत करना, श्रेणीबद्ध करना, मूल्यांकन करना सीखते हैं। समुदाय में बढ़ते हुए हम विरासत में संकल्पनाएँ हासिल करते हैं जिसे हम अपनी पहचान के बोध को पुख़्ता करने के लिए इस्तेमाल करते हैं। इसलिए यह ज़रूरी नहीं है कि हम सभी हासिल दृष्टिकोणों या विचारों से पूरी सहमति रखें, फिर भी कुछ मामलों में हम उनसे बँधे रह जाते हैं जैसे यह संभव है कि मौलिकता और नवाचार की बात केवल परंपरा तथा रिवाज़ के संदर्भ में ही की जाए। संज्ञानात्मक तथा मूल्यांकनीय मतों की मदद से किसी भाषा को बोलने का तरीका बुद्धिमतापूर्ण हो जाता है। इसमें अर्थ को समझना, सार-वस्तु को देखना, समझना, सही तौर पर पहचानना, गलती को पहचानना, सही तौर पर जवाब देना, वगैरह शामिल हैं।

मेइनांग के अनुसार, हम ज्ञान-अनुभव तथा मूल्य-अनुभव विकसित करते हैं। ज्ञान-अनुभव का आशय संज्ञानात्मक अभिवृत्तियों से है क्योंकि ये ज्ञान के विषय में निर्णय लेने और दृढ़ विश्वास में अभिव्यक्त होती हैं। मूल्य-भाव खुद के मूल्यांकन एवं दूसरे लोगों और वस्तुओं के मूल्यांकन में अभिव्यक्त होते हैं। भाषा सीखते समय हम अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाने की सार्थकता को पहचानना तथा उसके बारे में चिंतन करना सीखते हैं। हम दूसरों से अंतर्क्रिया करते समय पदानुक्रम के पैटर्न और उसकी संरचना, शक्ति और सामर्थ्य, अधीनीकरण तथा दमन, नियंत्रण और प्रभुत्व का अनुभव करते हैं और इनसे परिचित हो जाते हैं। हम पलायन, स्वीकृति, आज्ञाकारिता, मुकाबला या फिर प्रतिरोध के ज़रिए जीने की राह निकालकर इन संरचनाओं का मुकाबला करना भी सीखते हैं। प्रतिरोध न कर या चुनौती न देकर स्वीकार कर लेना आसान तरीका है। परंतु, यह स्वीकृति स्वतंत्र चिंतन को हतोत्साहित करके ही संभव हो पाती है।

सिद्धांत का निर्माण हमारे अपने विश्वासों के योजनाबद्ध संरचना या क्रमबद्धता से होता है तथा पद्धति का निर्माण हमारे प्रयास की संगति से होता है। प्रायोगिक ज्ञान उस आधारशिला का काम करता है जिस पर पूरा ज्ञान टिका रहता है। समस्त सैद्धांतिक ज्ञान उस ज्ञान का उच्चारण है, जिसे हमने अपने समुदाय की पद्धतियों में भागीदारी करके सीखा है। अलग-अलग समुदायों में भिन्न-भिन्न प्रथाएँ और परंपराएँ रही हैं।

'परंपरा' की व्याख्या कई तरह से की जा सकती है। इसका आशय उससे है जो सौंपी हुई है, संचरित है, या एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दी गई है क्योंकि इसमें ऐसी युक्तियाँ तथा सिद्धांत हैं जिन्होंने समुदाय को अपने अनुभव तथा क्रियाकलापों को अर्थ प्रदान करने में मदद दी है। संभवत: यही कारण है कि विटजेंस्टीन ने सही ही कहा है कि "परंपरा कोई ..... सूत्र नहीं है, जिसे कोई इनसान जब चाहे पकड़ ले उसी तरह जैसे कोई आदमी अपने पुरखों को पकड़ना चाहे तो ऐसा नहीं कर सकता।"*

व्यक्तिगत और छोटे स्तर पर अथवा संस्थागत एवं बड़े स्तर पर एक नियोजित प्रयास के तौर पर शिक्षा का लक्ष्य होता है बच्चों को सक्रिय होने के योग्य बनाना, समाज का ज़िम्मेदार, उत्पादक और फिक्रमंद सदस्य बनाना। इन्हें संगत कौशलों और विचारों के बारे में जानकारी देकर समुदाय के विभिन्न क्रियाकलापों से परिचित कराया जाता है। आदर्श रूप में शिक्षा से अपेक्षा की जाती है कि वह विद्यार्थियों को अपने अनुभवों के विश्लेषण तथा मूल्यांकन के लिए, उनके बारे में संशय, प्रश्न, जाँच-पड़ताल करने के लिए प्रोत्साहन दे। दूसरे

* विटजेंस्टीन, ल्यूडविग, 1973 *कल्चर एंड वेल्यू,* ब्लेकवैल, पृ. 76

शब्दों में जिज्ञासु होने के लिए तथा स्वतंत्र चितंन के लिए प्रोत्साहित करे।

हम जैसे-जैसे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे नए तथा अपरिचित अनुभवों से रूबरू होते हैं जो हमारे पुराने तरीके की चिंतन प्रक्रिया पर सवाल उठाते हैं या उन्हें चुनौती देते हैं क्योंकि ये अनुभव या तो असंगत हैं या पुराने अनुभवों से काफी भिन्न होते हैं जो कि हमने धीरे-धीरे समय के साथ लिए हैं। ऐसे अनुभव आलोचनात्मक तथा चुनौतीपूर्ण हैं, क्योंकि उनके लिए ज़रूरी है कि हम नयी संकल्पनाएँ रचें, पूर्वावधारित धारणाओं की समीक्षा करें, तथा दुनिया को नए तरीकों से देखें और बरताव करें। यह इनसान की अनोखी योग्यता है जिसे विवेकपूर्णता कहा जाता है और यह मानव व्यवहार के अनेक रूपों में व्यक्त है।

जिस दुनिया में हम रहते हैं उसे समझने तथा अपने अनुभवों से अर्थ निकालने के प्रयास में यह अपेक्षित है कि हम दुनिया के पैटर्न्स, संरचनाओं, तथा क्रम को पहचानें। बिना इस पहचान के हम कोई फैसला लेने में सक्षम नहीं होंगे, हम किसी बात के बारे में निश्चित होने की स्थिति में नहीं होंगे। निश्चितता की यह खोज, अपनी चरम सीमा पर, अद्वैतवादी और निरपेक्ष कसौटी की माँग करती है। इससे हमारे लिए विवेकसम्मत तथा निर्मूल ज्ञान, तथा ज्ञान और अज्ञान के बीच विभाजक रेखा खींचना संभव हो पाएगा। एक सीमित दृष्टि के गुलाम होकर हम भूल जाते हैं कि कई तरीके हैं जिनसे हमने जानना सीखा तथा दुनिया के बारे में तर्क करना जाना। यह भूल हमें विवेक को विशेष रूप से निगमनात्मक तर्क के सूत्रों में सीमित करने को मजबूर करती है, जो क्रिया की जगह सिद्धान्त पर ज़्यादा या विशेष बल देती है, कला पर प्रकृति विज्ञान, तथा ज्ञान पर सूचना को ज्यादा मूल्य देती हैं।